नरमेधयज्ञमीमांसा

पुरुषमेधयज्ञके विषय में अनेक लोगों का कथन है कि इस वेदोक्त यज्ञ में पुरुष नाम मनुष्य की मेध नाम हिंसा होती थी इससे यह मनुष्य पुरुष की हिंसा वेदोक्त है क्यों कि इस यज्ञ का वेद में विधान किया हैं इसीलिये इस यज्ञ नाम पुरुषमेध वा नरमेध रक्खा गया है शब्दकल्पद्रुम कोश जो कलकत्ते में छपा है और जिसके निर्माता राजा राधाकान्तदेव बहादुर प्रतिष्ठित और प्रसिद्ध पुरुष हैं उनने नरमेध शब्द पर लिखा है कि—

"नरमेधः, पुं० (मिधहिंसायाम्+भावे घञ्, नराणां पुरुषाणां मेधो हिंसनम्–यत्र ।) नरवधात्मकयज्ञविशेषः ॥ (यज्ञोऽयं वाजसनेयसंहितायाम् ३० । ३१ अध्याययोर्दर्शितः, तत्राधिकार्यादिकं ३० अ० वेददीपे उक्तम् ।

यथा—(ब्राह्मणराजन्ययोरतिष्ठाकामयोः पुरुषमेधसंज्ञको यज्ञोभवति, सर्वभूतान्यतिक्रम्य स्थानमतिष्ठा चैत्रशुक्लदशम्यामारम्भः । अत्र त्रयोविंशतिर्दीक्षा भवन्ति, द्वादशोपसदः,

पञ्च सुत्याइति चत्वारिंशद्दिनैः सिध्यति। अत्र यूपैकादशिनी भवति। एकादशाग्नीषोमीयाः पशवो भवन्ति तेषां च प्रतियूपं मध्यमे वा यूपे यथेष्टं नियोजनम्। आज्येन सकृद्गृहीतेन देवसवितरिति प्रत्यृचं तिस्रआहुतीराहवनीये जुहोति)

भावार्थ—नर नाम मनुष्य पुरुषों की मेध नाम हिंसा जिसमें की जाय उस मनुष्य वधात्मक यज्ञविशेष का नाम नरमेध वा पुरुषमेध है। इस यज्ञका वर्णन शुक्ल यजु वाजसनेय संहिता के ३०। ३१ अध्यायों में दिखाया है। इस यज्ञके अधिकारी आदि पं० महीधरकृत वेददीप नामक वेदभाष्यमें यों कहे हैं कि सब प्राणियों अर्थात् देवतादि से भी ऊंची कक्षा में पहुंचना चाहते हुए ब्राह्मण और क्षत्रिय इस यज्ञ के अधिकारी हैं। चैत्रमास की शुक्ल दशमी को इस यज्ञ का आरम्भ होता है इस यज्ञमें तेईस दिन दीक्षा होती, बारह दिन में बारह उपसद् और पांच सुत्या होती हैं इस प्रकार चालीस दिन में यह यज्ञ समाप्त होता है। इसमें ग्यारह यूप गाढ़े जाते हैं और ग्यारह ही अग्नीषोम देवताके लिये पशु नियत किये जाते हैं उन पशुओं का प्रत्येक यूप में वा बीचके

यूप में यथेच्छ नियोजन होता है एकवार ग्रहण किये आज्य से (देवसवितः प्रसुव०) इत्यादि तीन ऋचाओं द्वारा प्रत्येक से अध्वर्यु तीन आहुती आहवनीय कुण्ड में प्रथम होम करना है। परन्तु यह यज्ञ कलियुग में नहीं किया जाता क्योंकि कलिमें इसका निषेध है॥

हमने पहिले २ शब्दकल्पद्रुम कोश का भावार्थ सहित यह प्रमाण इसलिये लिखा है कि अच्छे २ प्रतिष्ठित विद्वानों तक में जब ऐसा अज्ञान फैल गया कि वेदोक्त नरमेध वा पुरुषमेध यज्ञ में मनुष्य मारे जाते थे तो साधारण बुद्धि के लोगों का अज्ञान तो बहुत अधिक है उनको जो जो कुछ भ्रम हो सो थोड़ा है। शब्दकल्पद्रुम कोश के बनाने छपाने वाले सनातनधर्मी हिन्दु जान पड़ते हैं, इसी कारण पहले हमने इनका लेख पूर्वपक्ष में लिखा है। आगे २ आर्यसमाजी और तदनन्तर वेद विरोधी जैन आदि के भी पूर्वपक्ष हम दिखावेंगे और सब पूर्वपक्षों का क्रमशः खण्डन तथा वेदोक्त सनातनधर्म का मण्डन अच्छे प्रकार युक्ति प्रमाणों सहित दिखावेंगे। अब शब्दकल्पद्रुम वाले का खण्डन पहिले देखिये।

पहिली बात यह है कि धातु पाठ में (मिधृ-हिंसायाम्) ऐसा धातु कोई नहीं है किंतु (मेधृ-संगमे च) ऐसा धातु पाठ में लिखा है। यद्यपि मेधृ धातु के संगम, मेधा, और हिंसा ये तीन अर्थ हैं तथापि वेदोक्त नरमेध वा पुरुषमेध यज्ञ

में जिसप्रकार हिंसा अर्थ नहीं लिया जाता सो विचार हम आगे प्रमाण सहित लिखेंगे। एक पुस्तक "प्राचीन भारतवर्ष की सभ्यता का इतिहास" नामक मिस्टर रमेशचन्द्रदत्त का बनाया अंग्रेजी में पहिले छपा था जिसका नागरी में अनुवाद इतिहास प्रकाशक समिति के मंत्री बा० श्यामसुंदरदास जी बनारस ने छपाया है। यद्यपि यह पुस्तक अनेक अंशों में वेद के सिद्धान्त से विरुद्ध है तथापि वेद में मनुष्यहिंसा पहिले से थी वा नहीं इस विषयमें उस पुस्तक का कुछ थोड़ासा अनुवाद हम यहां इसलिये लिखते हैं कि शब्दकल्पद्रुम कोशके निर्माता बंगाली हैं और मिस्टर रमेशचन्द्रदत्तजी भी बंगाली थे। सो एक बंगालीकी रायसे भी वेदमें मनुष्यहिंसाका न होना सिद्ध होता है। उक्त पुस्तकका पृष्ठ १७८। १७६। हेडिंग (ब्राह्मणोंके यज्ञ) प्रकरणमें देखिये-

"प्रोफेसर मेक्समूलर साहब ऊपरके उद्धृत भाग से यह सिद्धान्त निकालते हैं कि प्राचीन हिन्दुओं में मनुष्यवध प्रचलित था। परन्तु यह ऐतिहासिक काव्यकाल अथवा वैदिक कालमें नहीं, वरन् उससे भी बहुत पहिले था। हमें खेद है कि डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्रने भी प्रोफेसर मेक्समूलर का अनुकरण करके इसी कालके ग्रन्थोंमें से कुछ और वाक्य भी उद्धृत किये हैं और उनसे स्थिर किया है कि बहुत प्राचीन समयमें यह अमानुषी प्रथा प्रचलित थी। हम इन दोनों विद्वानोंके सिद्धान्त में शंका करते हैं।

यदि भारतवर्षमें यह प्रथा ऋग्वेदके सूक्तोंके बनने के पहिले प्रचलित होती तो उसका उल्लेख उत्तर कालके ब्राह्मण ग्रन्थोंसे कहीं अधिक मिलता। परन्तु उनमें उनका उल्लेख ही नहीं है।

ऋग्वेदमें जो शुनःशेपकी कथा है वह मनुष्यवधका कोई प्रमाण नहीं हो सकती। तथा ऋग्वेदमें और कहीं भी कोई ऐसी बात नहीं मिलती जिससे कि इस प्रथाके प्रचलित रहनेका अनुमान किया जाय। यह विचार करना असम्भव है कि ऐसी भयानक प्रथा प्रचलित रहकर धीरे २ उठ गयी हो और उसका कुछ भी चिन्ह उन वैदिक सूक्तोंमें न पाया जाय जिनमें कुछ तो बहुत ही प्राचीन समय के हैं।

फिर ऐतिहासिक काव्यकाल ही के किस ग्रन्थ में इस प्रथा का उल्लेख पाया जाता है? सामवेदका संग्रह वैदिक सूक्तों ही से किया गया है और इस सामवेदमें भी मनुष्योंके बलिदान किये जानेका कहीं वर्णन नहीं है। सिवाय इसके कृष्णयजुर्वेद और मूल शुक्ल यजुर्वेदमें भी इसका कहीं उल्लेख नहीं है"।

ऊपर लिखे मि० रमेशचन्द्रदत्तके अनुवादमें से केवल इतना ही सारांश लेना है कि ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद इत्यादि वेदोंमें कहीं भी मनुष्यका बलिदान नहीं है। और शब्दकल्पद्रुमके रचियता कहते हैं कि शुक्लयजुर्वेदके ३०।३१ अध्यायों में मनुष्यका मार डालना लिखा है सो वास्तव में मि० रमे-

शचन्द्रदत्तका यह लिखना सर्वथा सत्य है कि किसी भी वेदमें मनुष्यके मारने का कोई भी प्रमाण नहीं है, जिसका विशेष हाल आगे २ और भी स्पष्ट हो जायगा। यद्यपि आगे चलके मि० रमेशचन्द्रदत्त के इस इतिहास में यह भी लिखा है कि किसी किसी ब्राह्मणग्रन्थमें मनुष्यका बलिदान लिखा है। इसके उत्तर में यहां यह वक्तव्य है कि हम आगे शतपथ ब्रा॰ ह्मणका ही प्रमाण मनुष्य वधके निषेधमें लिखेंगे वही इसका उत्तर पर्याप्त होगा क्योंकि जो शतपथ स्पष्ट रूपसे मनुष्यके बलिदानका निषेध करता है वही उस काम का कर्त्तव्य कहे ऐसा कदापि हो नहीं सकता। सारांश यह है कि मिस्टर र॰ मेशचन्द्रदत्तके लेखसे मैक्समूलरसाहब डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र बंगाली और शब्दकल्पद्रुम कोशके निर्माता आदि लोगों के पूर्वपक्षोंका खण्डन होगया।

अब आर्यसमाजके जन्मदाता स्वा० दयानन्दजीका विचार नरमेधयज्ञ के विषय में देखिये। सन् १८७५ के छपे पहिले सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ३०३ पं० ६ में लिखा है कि "जहां २ नर॰ मेधादिक लिखे हैं वहां २ पशुओंमें नरोंको मारना लिखा है, इस अभिप्रायसे नरमेध लिखा है, मनुष्य नरको मारना कहीं नहीं, यहां नरमेध शब्द का अर्थ मनुष्यकी हिंसाके निषेधार्थ बुद्धिमानी से तो अवश्य किया गया है परन्तु मन्त्र ब्राह्मणा॰ त्मक वेदके अनुकूल इस लिये नहीं है कि पुरुषमेध यज्ञके वि॰ धान से सर्वथा विरुद्ध है। श्री स्वामी दयानन्दजीके मतसे

पुरुषमेध कोई खास यज्ञ ही नहीं ठहरता परन्तु वेदोंमें यह खास एक बड़ा यज्ञ है इससे स्वा० द० जी का लेख वेद विरुद्ध होना सिद्ध है।

द्वितीय स्वा० दया० अ० ३० शु० यजु० के (ब्रह्मणे ब्राह्मणम्, इत्यादि मन्त्रों के महीधर भाष्यको बहुत निन्दित कहा करते और लिखा करते थे कि ब्रह्मादेवता के लिये ब्राह्मण पुरुष का जो आलम्भन महीधरने लिखा बहुत बुरा अर्थ है क्योंकि उसने ब्राह्मणादि मनुष्योंकी हिंसा करना रूप निन्दित काम का अर्थ निकलता है। और इसी अ० ३० के(विश्वानिदेव०) इस पूर्वमन्त्रसे आसुव तथा परासुव क्रियाओंकी अनुवृत्ति लाकर स्वा० दयानन्द जी यह अर्थ करते थे कि ब्रह्मके लिये ब्राह्मणको आसुव नाम प्रकट करो। सो यह महीधरको दोष लगाना भी इस लिये बुरा है कि महीधरने भी पुरुष मनुष्यकी हिंसा कहीं लिखीही नहीं किन्तु वेदभाष्यकार महीधरने यह स्पष्ट लिखाहै कि (ततःसर्वान् ब्राह्मणादीन्सृजति) तदनन्तर सब नियुक्त किये ब्राह्मणादिको छोड़ देवे। इससे स्पष्ट सिद्ध है कि नरमेधमें पं० महीधरने भी मनुष्यका बलिदान नहीं माना है। सारांश यह निकलता है कि स्वा० दयानन्दजी ने यज्ञों की प्रक्रिया जानी ही नहीं थी, यदि जान लेते तो महीधरादिको ऐसा व्यर्थ दोष न लगाते अस्तु जो हो॥

अब देखिये अज्ञानग्रस्त भेड़ियाधसानके प्रवाह में बहने वाले जैन लोगोंका विचार-आत्माराम जैनकृत अज्ञानतिमि-

रभास्कर ग्रन्थकी प्रवेशिकाके पृष्ठ २७में लिखा है कि तैत्ति रीय ब्राह्मण ३ काण्डे ४ प्रपाठके १६ अनुवाक में लिखा है कि-

आशायै जामिम्, प्रतीक्षायै कुमारीम्, प्रमुदे कुमारीपुत्रम्, आराध्यै दिधिषूपतिम् ॥

भाष्यम्-आशायै जामिं निवृत्तरजस्कां भोगाऽयोग्यां स्त्रियम्, प्रतीक्षायै-कुमारीमनूढां कन्यामालभते। प्रमुदे दुहितुः पुत्रम्, आराध्यै दिधिषूपतिं द्विर्विवाहं कृतवती स्त्री तस्याः पतिः ॥

अर्थ-आशा के वास्ते जिस स्त्रीका ऋतुधर्म जाता रहा होवे भोग करनेके योग्य नहीं रही होवे तिसका वध करना चाहिये और प्रतीक्षाके वास्ते कुमारी कन्याका वध करना चाहिये। प्रमुदके वास्ते बेटीके बेटेको वध करना चाहिये। आराध्यके वास्ते जिस स्त्रीने दोवार विवाह किया होवे तिसके पति अर्थात् खसम का, यज्ञमें वध करना चाहिये ॥

यह ऊपरका संस्कृत और भाषाका पाठ हमने ज्योंका त्यों आत्माराम जैनका लिखा हुआ लिख दिया है जिसको देखके पाठकोंको बडा विस्मय होगा। क्योंकि यदि किसी देवता के अर्थ कुमारी कन्यादिका वध करने के लिये वास्तवमें वेद

की आज्ञा है तो ऐसे वेदको सभी सनातनधर्मी तिलाञ्जलि देनेको तैयार हो सकते हैं क्योंकि यज्ञकर्ममें मनुष्यका वध करना बहुत ही बुरा भयङ्कर काम है। और यदि वेदमें ऐसी आज्ञा नहीं है तो बीस करोड़ सनातनधर्मी वेदानुयायी हिन्दुओंको ऐसा भयङ्कर दोष लगाने और बीस करोड मनुष्यों का दिल दुःखाने वाला आत्माराम जैन और उसके लेखका अनुमोदन करने वाले उसके अनुयायी अन्य जैन लोग कितने बड़े हिंसक निर्दयीहैं यह पाठक लोग सोच लेवें। महापातक नामी पाप सामान्य मनुष्यको मार देनेसे भी बहुत बड़ा माना जाता है। (गुरोश्चालीकनिर्बन्धः समानि ब्रह्महत्यया) किसी प्रतिष्ठित धर्मात्मा पुरुषको झूंठा ही बड़ा दोष लगाना ब्रह्महत्याके तुल्य महापातक है।

हम यहां तक पुरुषमेधयज्ञके विषयमें पूर्वपक्षियों के विचार संक्षेपसे दिखा चुके, अब आगे मन्त्र ब्राह्मणात्मक वेद का सिद्धान्त दिखाते हैं जिससे हमारे पाठकों का विश्वास हो जायगा कि वेदमें पुरुषमेध वा नरमेध यज्ञ कैसा माना गया है। शतपथकाण्ड १३। प्रपाठक ४। ब्राह्मण३ कण्डिका १

अथ यस्मात्पुरुषमेधो नाम इमे वै लोकाः पूरयमेव पुरुषो योऽयं पवते सोऽस्यां पुरि शेते तस्मात्पुरुषस्तस्य यदेषु लोकेष्वन्नं तदस्यान्नं मेधस्तस्मात्पुरुषमेधोऽथो यदस्मिन् मेध्यान्पु-

रुपानालभते तस्माद्वेव पुरुषमेधः॥ १ ॥

भावार्थः—अब जिस कारणसे पुरुषमेध नाम हुआ सो यहां दिखाते हैं [यह भी ध्यान रहे कि वेदोंमें नरमेध नाम का इस पुरुषमेध से भिन्न यज्ञ कोई भी नहीं है। पुरुष तथा नर ये दोनों शब्द एक ही अर्थके वाचक होने से इसी पुरुष मेधको कोई कोई नरमेध भी कहा करते हैं] इन सप्त आकाश तथा सात पताल चौदह लोकों का ही नाम पुर है और यह प्रत्यक्ष विचरने वाला वायु ही पुरुष है कि जो सबको पवित्र करता है। सब चराचर की अपवित्रता को नष्ट करनेवाले जगत् में जितने पदार्थ हैं उन सबमें वायु ही मुख्य है इसी कारण वायु का नाम पवन हुआ है। यह वायु इन सब लोकों में शयन कर रहा है नाम विस्तृत हो रहा है इसी से [पुरि-शेते-पुरुषः] वायु का नाम पुरुष हुआ है। जब से आर्यावर्त्त में यवन भाषा का प्रचार हुआ तभी से हवा शब्द के स्त्रीलिङ्ग होने से आर्यलोग भी लोक भाषा में वायु को स्त्रीलिङ्ग कहने मानने लगे हैं सो यह भूल है। वेद के सिद्धान्तानुसार वायु शब्द सदा से पुलिङ्ग है वास्तव में वेद का मत यह है कि वायु ही पुरुष है क्योंकि मनुष्यादि में भी वायु का ही प्रबलांश पुरुष कहाता है। मध्यस्थान देवता वायु का ही बल मनुष्यादि को पुरुष बनाता है इससे वायु ही मुख्य पुरुष है॥

(तस्य यदेषु लोकेष्वन्नं तदस्यान्नं मेधः) उस वायु का इन सब लोकों में जो अन्न है वही अन्न इस वायु पुरुष का मेध है [पुरुषस्य वायोर्मेधोऽन्नं पुरुषमेधः] इससे वायु पुरुष का मेध नाम अन्न पुरुषमेध कहाताहै (तद्यदस्यैतदन्नं मेधस्तस्मात्पुरुषमेधः) सो जिससे इस वायु पुरुषका अन्न ही मेध है इससे पुरुष मेध नाम हुआ है। पुरुषमेध शब्द का यह तो सामान्य व्यापकार्थ हुआ कि जो सर्वत्र घटता हुआ पुरुषमेध नामक खास यज्ञ में भी घटजावेगा। अब विशेष अर्थ यह है कि (अथायदस्मिनमेध्यान्पुरुषानालभते तस्माद्वेव पुरुषमेधः) और जो इस यज्ञ में पवित्र मेधायुक्त होजानेवाले पुरुषों का अलम्भन संस्कार किया जाताहै इसी कारण इस यज्ञ का नाम पुरुषमेध वा नरमेध हुआ है। सब संसार का अतिक्रमण करके सबसे उच्च कोटि नाम ब्रह्मलोक की प्राप्ति वा मोक्ष होने के लिये पुरुषमेधयज्ञ किया जाता है कि जैसे अग्नि दीपकादि बुझ जाते हैं नाम वायु में लीन हो जाते हैं वैसे ही मनुष्यादि प्राणियों का मर जाना भी वायु में लय होजाना है इसी कारण वायु पुरुषका यह सब जगत् अन्न है पर वायु पुरुष स्वयं अमरदेवता है। पुरुषमेध करनेवाला चाहता है कि मैं भी वायु के तुल्य अमर हो जाऊं अर्थात् पुरुषमेध कर चुकने से पुरुष नाम वायु का मेध नाम अन्न वह मनुष्य नहीं रहता किन्तु स्वयं ही पुरुष हो जाता है अब पाठक महाशय विचार करें कि जब मूलवेद के

भाष्य व्याख्यान रूप ब्राह्मण वेद में मेध शब्द का अर्थ हिंसा नहीं किया किन्तु अन्य वा मेधा अर्थ किया है तब शब्द कल्पद्रुमादि वालों का हिंसार्थ कहना मिथ्या सिद्ध होगया।

आङ् पूर्वक लभ धातु का अर्थ यद्यपि कोशवालों ने हिंसा भी लिखा है परन्तु वास्तव में आलम्भन का अर्थ हिंसा नहीं है किन्तु इस पदका अर्थ स्पर्श वा संस्कार करना ही बहुत स्थानों में आता है॥

अथास्यै दक्षिणाᳫंसमधि हृदयमालभते–मम व्रते० ॥ पारस्करगृह्यसूत्रे कां१ कं०८। अथास्य दक्षिणाᳫंसमधि हृदयमालभते–ममव्रते० पा० कां० २ कं० २ ॥ रौद्रᳫंराक्षसमासुरमाभिचरणिकं मन्त्रमुक्त्वा पित्र्यमात्मानं चालभ्योपस्पृशे-दपः कातीयकल्पसूत्रे अ० १ ॥

भावार्थ–पारस्कराचार्य विवाह प्रकरणमें लिखते हैं कि वर अपने दहिने हाथ से कन्या के दहिने कंधे के ऊपरसे कन्या के हृदय का आलम्भन नाम स्पर्श (मम व्रतेते हृदयं दधामि०) मन्त्र पढ़के करे। और उपनयन संस्कार में इसी प्रकार इसी मन्त्र से आचार्य अपने शिष्य के हृदय का आलम्भन नाम स्पर्श करे। आलम्भन का अर्थ जो लोग हिंसा ही

कहते मानते हैं उनके विचारानुसार कन्या और शिष्य को काट देना अर्थ होसकता है। परन्तु यह सभी जानते हैं कि विवाह और यज्ञोपवीत के समय कन्या और शिष्य को कभी कहीं कोई भी हिंसा नहीं मानता किन्तु स्पर्श करना ही सब लोग मानते और करते हैं। तथा कार्तायकल्प सूत्र के परिभाषा प्रकरण में लिखा है कि रुद्र राक्षस, असुर, अभिचरण और पितृ देवतावाले मन्त्रों को कर्म काण्ड में बोलकर अपने हृदयका आलम्भन नाम स्पर्श करे और पश्चात् दहिने हाथसे जल स्पर्श करे। यदि यहांभी आलम्भन का हिंसा अर्थ होता तो कर्म करनेवाला अपने आपकोही मार डाला करता परन्तु ऐसा अर्थ कोई भी नहीं मानता है॥

पाठक महाशय! ध्यान रक्खें कि ऐसे २ सैकड़ों प्रमाण विद्यमान हैं कि जहां आलम्भन का हिंसा अर्थ कोई भी विद्वान् नहीं करता न मानता है। किन्तु ऐसे प्रमाणों में सभी लोग आलम्भन पदका स्पर्श करना ही अर्थ मानते हैं। अब रहा पुरुषमेध यज्ञ में भी जो आलम्भन लिखा है सो यद्यपि शुक्ल यजुः-संहिता के अ० ३० (ब्रह्मणे ब्राह्मणं०) इत्यादि मन्त्रों में आलम्भन शब्द नहींहै, तथापि अन्तिम २२ बाइसवीं कण्डिका में (अथैतानष्टौ विरूपानालभते०) आलम्भन शब्द आया है इससे सभी के साथ आलम्भन लगाया जाता है। परन्तु जब पुरुषमेधमें नियुक्त १८४ एक सौ चौरासी पुरुषों में से किसी कोभी मारना नहीं कहा किन्तु सभीको संस्कार

करने पश्चात् छोड़ना स्पष्ट लिखा है तब आलम्भन का हिंसा अर्थ कैसे हो सकता है ? अर्थात् कदापि नहीं । इससे पुरुषमेध यज्ञ में ब्राह्मणादि पुरुषों के संस्कार का ही नाम आलम्भन है यह सिद्ध होगया ॥

यदि कोई कहे कि जब आलम्भन का हिंसा अर्थ कहीं भी नहीं है तो टीकाकारों ने वा कोश बनाने वालों ने इस शब्द का हिंसा अर्थ क्यों किया ? तब इसका संक्षेप से उत्तर यह है कि जहां बकरा आदि पशु का संज्ञपन के लिये आलम्भन नाम संस्कार किया जाना लिखा है वहां शब्दार्थ हिंसा न होने पर भी तादर्थ्य के विचार से वैसा अर्थ मान लिया गया है । इतने से आलम्भन का हिंसा अर्थ कदापि सिद्ध नहीं होता ॥

तान्पर्यग्निकृताः पशवो बभूवुरसंज्ञप्ताः ॥ १२ ॥ अथ हैनं वागभ्युवाद । पुरुष मा संतिष्ठिपो यदि सᳬस्थापयिष्यसि पुरुषएव पुरुषमत्स्यतीति । तान्पर्यग्निकृतानेवोदसृजत्तद्देवत्या आहुतीरजुहोत्ताभिस्ता देवता अप्रीणात्ता एनं प्रीता अप्रीणन्त्सर्वैः कामैः ॥ १३ ॥ आज्येन जुहोति तेजो वाऽआज्यं. तेजसैवास्मिंस्तत्तेजो ·

दधाति ॥ १४ ॥ शतप० १३ । ४ । २ ॥

भावार्थ-यज्ञ में पुरुषों का नियोजन करने पश्चात् कई संस्कार मन्त्रों द्वारा होजाने पर एक कर्म पर्यग्निकरण होता है। जिसमें उत्तरवेदि के अग्नि को लेकर अग्नीध्र ऋत्विज् उत्तरवेदि और यूपादि सहित सबके चारों ओर घुमाता है [जिसका अभिप्राय यहभी हो सकता है कि इन पुरुषों के चारों ओर सदा ही प्रकाश रूप ज्ञान विद्यमान रहे ये लोग अज्ञानान्धकार में कभी न पड़ें वा इन को किसी ओरसे अज्ञानान्धकार न घेरे] इस पर्यग्निकरण संस्कारके पश्चात् ही छागादि के संज्ञपन का अवसर यज्ञ में माना गया है। इसी लिये पुरुषों के भी संज्ञपन की शंका किन्हीं लोगों को होना सम्भव देखकर कहा गया कि इन ब्राह्मणादि पुरुषोंका संज्ञपन नहीं करना चाहिये । इसी लिये पुरुषमेध यज्ञ करने वाले यजमान से आकाशवाणी वा वेदवाणी कहती है कि तुम पुरुषको मत मारो। यदि पुरुष नाम मनुष्य का वध कराओगे तो पुरुष ही पुरुषको खाने लगेंगे। इसलिये पर्यग्निकरण संस्कार के पश्चात् यजमान उन ब्राह्मणादि पुरुषोंको छोड़देता है। और छोड़ देने के पश्चात् उन १८४ ब्रह्मादि देवताओं के नामसे घी की १८४ आहुति होम करता है। इन आहुतियोंसे ही उन देवताओं को तृप्त करता

और तृप्त वा सन्तुष्ट हुए देवता यजमानकी सब मनःकाम-
ना पूर्ण करते हैं ॥

ऊपर के पृष्ठमें जो आत्माराम जैनने तैत्तिरीय ब्राह्मणके
पतेसे कुमारी कन्या और कुमारीपुत्रादि का आलम्भन लिखा
है सो शुक्लयजु संहिता के अध्याय ३० में भी कुमारीपुत्रादि
कईका आलम्भन १८५ में आगया है। इससे तैत्तिरीय ब्रा-
ह्मण के प्रमाण का भी वही उत्तर है कि जो व्यवस्था शुक्लय-
जु के अ० ३० के लिये ऊपर लिखी है अर्थात् तैत्तिरीय ब्राह्मण में
भी यही बात कही गई है कि जामि आदि स्त्रियों और कुमा-
रीपुत्रादि पुरुषों को संस्कार के लिये पुरुषमेध यज्ञ में नि-
युक्त करना चाहिये। आलम्भन शब्द का अर्थ भी मारना
कहीं नहीं लिखा और सायणादि के भाष्यों में भी मनुष्य
को मारने के लिये कोई एक भी शब्द नहीं है, इससे आत्मा-
राम का लिखना सर्वथा ही मिथ्या है। मूल में वा संस्कृत
भाष्य में मनुष्य को मारने का कोई भी शब्द नहीं है केवल
आत्माराम ने अपनी भाषामें मन गढ़न्त करके सरासर सो-
लहो आना झूंठ लिखा है ॥

इससे सिद्ध हुआ कि पुरुषमेध यज्ञमें पुरुषका वध कभी
नहीं होता था। अब पाठक लोग विचार करें कि जब नर
मेध नाम पुरुषमेध यज्ञके प्रकरण में ही मनुष्य के बलिदान
का साफ २ निषेध ऊपर लिखे शतपथ ब्राह्मण के प्रमाण से
सिद्ध होगया तब मूल वेदकी तो बात ही क्या ?- किन्तु अप-

ध्यानरूप ब्राह्मणात्मक वेदमें भी मनुष्यके बधका नाम नहीं प्रत्युत निषेध है तब शब्दकल्पद्रुम, बा० रमेशचन्द्रदत्त और आत्मारामादि जैनों का आक्षेप सर्वथा ही निर्मूल तथा मिथ्या सिद्ध होगया ॥

यदि कोई कहे कि फिर पुरुषमेध वा नरमेध यज्ञ में ब्राह्मणादि पुरुषों को किस प्रयोजन से नियुक्त किया जाना लिखा है? वैसा न होता तो आत्मारामादि जैनों को ऐसा अवसर क्यों मिलता? । इसका संक्षेप से समाधान यह है कि पुरुषमेध यज्ञमें वैसे विधान का बहुत ही उत्तम अभिप्राय है। श्रुतिमे लिखा है कि—

आत्मैवेदमग्र आसीत्पुरुषविधः ॥ बृहदा० अ० १ ब्रा० ४ ॥

भा०—इस कार्यरूप संसार की उत्पत्ति से पहिले यह जगत् आत्मरूप ही था तब वह आत्मा पहिले मनुष्य पुरुष के रूपमें प्रकट हुआ था। इसी कारण पुरुषमेध यज्ञमें मनुष्य शरीररूप मूर्त्तियोंके द्वारा उस पुरुष परमात्मा की स्तुति वा पूजा उपासना दिखाई गया है। मनुष्य का शरीर अपवित्र है यह बात सभी शास्त्रों से सिद्ध होचुकी है इसी लिये इस पुरुषमेध यज्ञमें मनुष्य शरीररूप ब्राह्मणादि मूर्त्तियोंको नियुक्त करके वेदमन्त्रों द्वारा वेद विधिसे उनका संस्कार होजाने पर वे शुद्ध होजाते हैं तब उनके द्वारा पर-

मात्मा पुरुष की स्तुति की जाती है। इसी लिये (सहस्र-शीर्षा०) इत्यादि पुरुष सूक्त का विनियोग सूत्रकार ने ऐसा लिखा है कि—

नियुक्तान् ब्रह्माभिष्टौति होतृवदनुवाकेन सहस्रशीर्षेति ॥ कात्यायनश्रौतसू० अ०२१।१।११॥

भा०—नियुक्त पुरुषों तथा उत्तरवेदि से दक्षिण में उत्तराभिमुख खड़ा हुआ ब्रह्मा ऋत्विज् होता के तुल्य नियुक्त पुरुषों की स्तुति करे। षोडशोपचार पूजन में स्तुति करना भी एक प्रकार की पूजा है, होता के तुल्य कहने से प्रयोजन यह है कि ऋग्वेदोक्त रीति से पुरुषों को देवता रूप परमात्म भावना से स्तुति करे। ऋग्वेद की याज्ञिक रीति यह है कि जिस एक वा कई सूक्तों से एकसाथ में स्तुति करनी हो उस समुदाय की पहिली और अन्त की ऋचा को तीन २ बार बोले [त्रिःप्रथमामन्वाह त्रिरुत्तमाम्] यजमें अनुवा-क्यादि प्रत्येक ऋचाके अन्तिम विराम के स्थान में प्लुत प्र-णव का उच्चारण करे [प्रणवष्टेः] इस सूत्रमें पाणिनि आ-चार्य ने भी यही बात कही है और प्रत्येक ऋचा के अन्त में विराम न करके ऋचाके अन्त्य प्रणव सहित अगली ऋचा के पूर्वार्द्ध पर आगे २ विराम करता जावे यज्ञों में शस्त्रादि के साथ सन्धि कर के बोले और अगली ऋचा बोलने के समय सब [७] होता इसी प्रकार ऋचाओं को

बोला करते हैं। यह भी ध्यान रहे कि यजुर्वेद में मूर्द्धन्य ष को ख तथा य को ज अनुस्वार को ४ बोलने की जो आज्ञा है वह ऋग्वेद में नहीं है, इसी से होता लोग वैसा नहीं बोलते। होताके तुल्य कहने से यहां ब्रह्मा भी ज्यों का त्यों ष आदि ही बोले जैसे—

ओ३म्—स॒हस्र॑शीर्षा॒ पुरु॑षः स॒हस्रा॒क्षः स॒हस्र॑पात्। स भूमिं॑ स॒र्वत॑स्पृ॒त्वाऽत्य॑तिष्ठद्दशाङ्गु॒लोऽ३म् ॥२॥

इसी प्रकार एक मन्त्रको दो वार बोलकर तीसरीवार में—

०दशाङ्गु॒लो३म्पुरु॑ष ए॒वेदं सर्वं॒ यद्भू॒तं यच्च॒ भाव्य॑म्। उ॒ताम॑तत्व॒स्येशा॑नो॒ यदन्ने॑नाति॒रो॒हति॑ ॥ ओ३म् तावा॑नस्य महि॒माऽतो॒

ज्यायाँश्च पूरुषः । पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवो४म्त्रिपादू० ॥

इत्यादि रीति से बोलना चाहिये । इसी रीतिको ऋग्वेदी याज्ञिक लोग सन्तन कहते हैं । प्रयोजन यह है कि वेदानुयायी आर्य लोग इस प्रकार पुरुषयज्ञ में संस्कार किये मनुष्य पुरुष रूप मूर्तियों द्वारा भगवान् पुरुषोत्तम परमात्माकी पूजा करते आये हैं इसीलिये मनुष्य पुरुषोंका यज्ञमें नियुक्तकरने का विधान है । यह भी ध्यान रहे कि जिन २ पुरुष वा स्त्रियोंका पुरुषमेध यज्ञमें संस्कार किया जाता था वे जीवित ही कृतार्थ और पूजनीय होजाते थे अन्य लोग उनका दर्शन करने में अपने को कृतार्थ मानते थे इससे उनके भी उपकारार्थ यह काम था । इस अंग पर हम अधिक कुछ नहीं लिखना चाहते ऊपर के मन्त्रान्तों में प्रणव के आगे चार का अंक दिया है उसका प्रयोजन यह है कि (चतुर्मात्रा याज्ञकी प्लुतः) इस शांखायनसूत्र के लेखानुसार टि का जो प्लुत प्रणव होता है वह चार मात्रा का प्लुत है ।

शुक्ल यजुर्वेद अ० ३१ में कहा पुरुषसूक्त बहुत प्रसिद्ध है

प्रायः सभी उत्तम कामों में इस पुरुष सूक्त का पाठ परमात्मा की स्तुति के लिये किया जाता है और यह सोलह ऋचा का पुरुषसूक्त प्रायः सभी वेदों में आता है ऋग्वेद संहिता के अष्टक ८ अध्याय ४ में यही सोलह ऋचाका पुरुषसूक्त है। और अथर्व संहिता काण्ड १६। अनुवाक १ सूक्त ६ पुरुषसूक्त है उसपर वेदभाष्यकार सायणाचार्य ने लिखा है कि—

"सहस्रबाहुः पुरुषः,, इति सूक्तद्वयं पुरुषमेधे क्रतौ पुरुषपश्वनुमन्त्रणे विनियुक्तम्। "पुरुषमेधोऽश्वमेधवच्चैत्रयाः पुरस्तात्" इति प्रक्रमस्य वैताने सूचितम्। "स्नातम्, अलंकृतमुत्सृज्यमानं सहस्रबाहुः पुरुषः [१८।६] केन पार्ष्णी [१० । २] इत्यनुमन्त्रयते,, इति वै० [७ । २]

सर्वातिशायित्वसर्वभूतात्मकत्वकामेन नारायणाख्येन पुरुषेणानुष्ठितस्य पुरुषमेधक्रतोः प्रतिपादकत्वाज्जगत्कारणस्यादिनारायणपुरुषस्य प्रतिपादकत्वाद्वैतत्पुरुषसूक्तमित्युच्यते।

अतोऽस्य सूक्तस्य द्विविधोऽर्थः। आधियज्ञिक-एकआध्यात्मिकोऽपरः।

भावार्थः—(सहस्रबाहुः पुरुषः०) इत्यादि दो सूक्त पुरुषमेध यज्ञ में पुरुषरूप पशु के अनुमन्त्रण के लिये विनियुक्त हैं [यहां पुरुष को पशु इस लिये कहा है कि मनुष्य को जब तक तत्वज्ञान नहीं होता तब तक इसको पशुवत् विषयों में प्रवृत्ति रहती है] पुरुषमेध यज्ञ भी अश्वमेध के तुल्य चैत्र की पूर्णमासी से पहिले ही शुरू होता है ऐसा आरम्भ कर के कल्पसूत्र में कहा है कि स्नान और [illegible] चन्दनादि से सुशोभित पुरुषको यज्ञमें से छोड़ते समय (सहस्रबाहुः पुरुषः०) और (केन पार्ष्णी० । अथर्व० काण्ड १० सू० २) इन दो सूक्तों से मनुष्य पुरुष को देखता हुआ पुरुष परमात्मा की स्तुति करे। पहिले सूक्त के आरम्भ में सबसे ऊपर और सर्वरूप हो जाने की इच्छा से सगुण रूप में प्रकट हुए नारायण पुरुष ने किये पुरुषमेध यज्ञ का प्रतिपादक होने और जगत् के आदि कारण नारायण पुरुष का प्रतिपादक होनेसे इसका नाम पुरुषसूक्त हुआ है। इसीसे इस सूक्त के दो अर्थ होते हैं एक यज्ञविषयक द्वितीय अध्यात्म विषयक अर्थ है। यहां भी कल्पसूत्र के प्रमाण से तथा भाष्यकर सायणाचार्य के प्रमाण से सिद्ध है कि यज्ञ में नियुक्त किये पुरुष का बलिदान नहीं होता था किंतु संस्कार के पश्चात् छोड़ते समय

मनुष्य पुरुष को देखते हुए नारायण पुरुष की उपासना होती थी ॥

हम अपने पाठकों को सूचना देते हैं कि आत्माराम जैन के लेखानुसार जो कोई जैन लोग वेद पर मनुष्य के बलिदान का कलंक लगाते हों उनसे कहिये कि यदि तुम लोग किसी सभा में पण्डितों के सामने प्रमाणों द्वारा सिद्ध कर दो कि वेदोक्त नरमेध यज्ञ में मनुष्य का बलिदान है तो लाखों रुपया देने से भी यह बड़ी बात हम कहते हैं कि बड़े २ नामी पण्डित् विद्वान जैन हो जावेंगे और यदि आप लोग इस बात को सिद्ध न कर सको और यह बात मिथ्या निकले तो आत्माराम के मिथ्या लेख पर हड़ताल फेरो। और तुम सब सनातनधर्मी आस्तिक बन जाओ। यदि जैन लोग इसपर भी चुप रहें तो सब लोगों को जान लेना चाहिये कि इनका लिखना कहना सर्वथा ही मिथ्या है। विशेष कर जैनों के लिये यह बात इसलिये लिखी है कि इस समय वे लोग ही सनातन धर्म के शुद्ध वेदादि शास्त्रों को विशेष कर ऐसे २ मिथ्या कलंक लगाने की चेष्टा किया करते हैं। मनुष्य के बलिदान का फैसला हो जाने पर गोवध्यादि विषय पर भी जैनों के साथ विचार होगा।

परन्तु एक रीति से तो हम भी मनुष्य के बलिदान का होना वेदानुकूल मानते हैं सो वह रीति यह है कि—

नजातुकामान्नभयान्नलोभाद्धर्मंत्यजेज्जीवित-स्यापिहेतोः ॥

अर्थात् धर्म की रक्षा के लिये वा देशोपकार के लिये मनुष्यको अपना जीवन हर्ष पूर्वक देदेना यही मनुष्यका बलिदान वेदानुकूल है। इसी उद्देशसे इमाममसीह फांसी पर चढ़गये थे। इसी तात्पर्यको लेकर गुरु गोविन्दसिंहजी के पुत्र तथा हकीकतराय बालक स्वधर्मकी रक्षा करते हुये सहर्ष स्वयं बलिदान होगये। भारतवर्षमें अन्य भी ऐसे अनेक होचुके हैं

पाठक महाशय! हम नरमेधयज्ञ विषयक इस अल्प लेख को समाप्त करते हुये हमें एक बातका और भी स्मरण आगयाहै कि सनातनधर्मी वेदानुयायी समझदार लोगोंका भी अभी तक बहुत भाग ऐसा है जिसने यही मान रक्खा है कि नरमेधयज्ञ उसी का नाम है जिसमें मनुष्यको मारके होम किया जाता है इसका एक उदाहरण अभी हाल देखने में आया सो यह है कि खास इटावा नगरके निवासी श्रीमान् पं० द्वारकाप्रसादजी चतुर्वेदी जो अब प्रयागराजमें विद्यमान हैं कोई एक दो वेदका ज्ञाता और वक्ता हो सो भी नहीं किन्तु आप चारों वेदके वक्ता होने से चतुर्वेदी एक महती उपाधिका भार धारण करने वाले परम आस्तिक पूरे सोलहो आना वैष्णवहैं और द्वारकातीर्थधामका आप प्रसादरूप हैं। इन्हीं म-

हाशयने एक श्रीमद्भागवत संग्रह पुस्तक नागरी भाषा में लिखा और प्रयागमें छपाया है उसमें नरमेध शब्दके ऊपर नोट दिया है कि "जिसमें मनुष्यको मारके होम किया जाता है उसका नाम नरमेधयज्ञ है" जैनमतावलम्बी वेदके परम शत्रु हैं तथा आस्तिक नहीं हैं इससे उनके कहने लिखने का हमें इतना दुःख नहीं है किन्तु हमारे वेदमतानुयायी चतुर्वेदी आदि उपाधियोंसे अपने को विभूषित करने वाले सनातनधर्मी आस्तिक लोगोंको ऐसा उलटा मिथ्या ज्ञान हुआ है कि जिससे आस्तिक हिन्दुओंके परमपूज्य वेद भगवान् पर एक बड़ा भयंकर मिथ्या कलंक लगाया जाता है इसका हमें बड़ा ही दुःख है। इस लिये पाठक महाशयों से हमारा विशेष निवेदन है कि वे चुप न रहकर इस नरमेध यज्ञका आन्दोलन अवश्य उठावें। यदि सनातनधर्मी पत्रों के सम्पादक इसका आन्दोलन उठावें तो और भी अच्छा हो॥

* इतिशम् *